वे मज़दूर ही थे जो लोकतंत्र लेकर आए थे, और मज़दूर ही आज से गहरा लोकतंत्र स्थापित करेंगे: चौथा न्यूज़लेटर (2023)

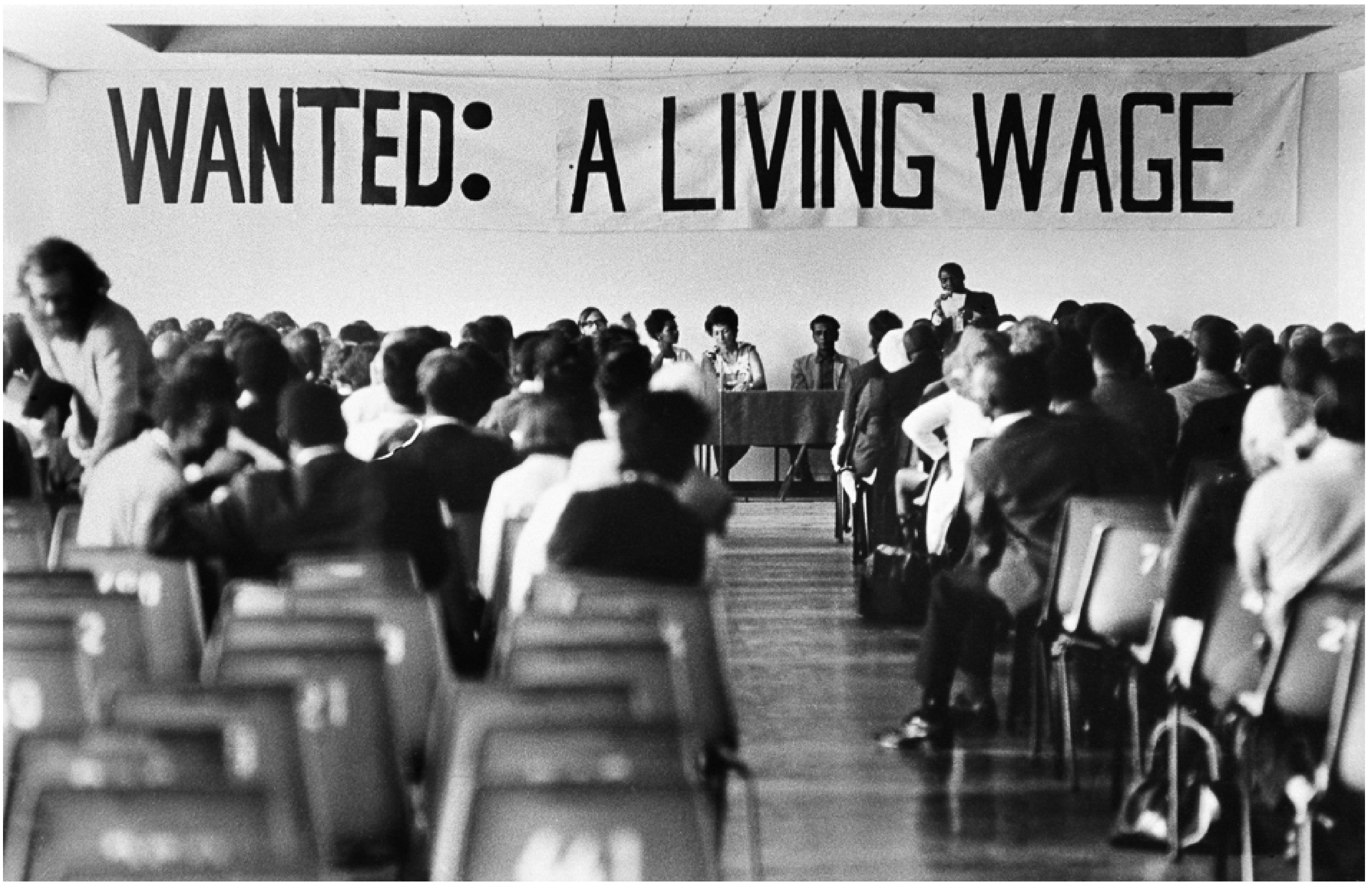

स्ट्राइकिंग फ्रेम ग्रुप के कार्यकर्ता 1973 में बोल्टन हॉल में प्रबंधन के साथ हुई बातचीत पर रिपोर्ट के लिए मिलते हैं। क्रेडिट: डेविड हेमसन संग्रह, केप टाउन पुस्तकालय विश्वविद्यालय.

प्यारे दोस्तों,

ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

लोकतंत्र की प्रकृति सपने जैसी है। अपमान और सामाजिक पीड़ा की बाधाओं से पार पाने की तीव्र इच्छा से प्रेरित यह अवधारणा पूरी दुनिया में व्याप्त है। भूख या अपने बच्चों की मौत से जूझते हुए पुराने समुदाय इसका कारण प्रकृति या

देवलोक की मर्ज़ी के रूप में देखते रहे होंगे। दु:ख के कारणों के रूप में ये स्पष्टीकरण आज भी हमारे बीच मौजूद है। लेकिन सामाजिक उत्पादन के माध्यम से बड़े पैमाने पर अधिशेष उत्पन्न करने की मानव क्षमता, और मानव जाति के बड़े हिस्से को उस अधिशेष तक पहुँच से वंचित रखने की पूँजीवादी क्रूरता से नये प्रकार के विचार और नयी कुंठाएँ उत्पन्न हो रही हैं। चीज़ों तक पहुँच न होने की वास्तविकता और चीज़ों के बहुतायत में होने की जागरूकता से उत्पन्न यह मानवीय हताशा, लोकतंत्र के लिए संघर्ष कर रहे कई आंदोलनों का प्रेरणा स्रोत है।

औपनिवेशिक सोच की आदतें कई लोगों को इस भ्रम में डालती हैं कि लोकतंत्र यूरोप में उत्पन्न हुआ था: या तो प्राचीन ग्रीस में (क्योंकि डेमोक्रेसी शब्द डेमो, 'जनता', और क्रेटोस, 'शासन' से आया है) या 1628 की अधिकार संबंधी अंग्रेज़ी याचिका व 1789 की मानव एवं नागरिक अधिकारों की फ्रांसीसी घोषणा जैसी मानव अधिकारों की परंपरा से। लेकिन यह कुछ हद तक औपनिवेशिक यूरोप की एक पूर्वव्यापी कल्पना है। यूरोप ने प्राचीन ग्रीस के उत्तरी अफ्रीका व मध्य पूर्व के साथ मज़बूत संबंधों की अनदेखी करते हुए प्राचीन ग्रीस को अपने हिसाब से विनियोजित किया और दुनिया के बड़े हिस्से में बौद्धिक हीनता पैदा करने के लिए अपनी शक्ति का इस्तेमाल किया। ऐसा करते हुए, औपनिवेशिक यूरोप ने लोकतांत्रिक परिवर्तन के इतिहास में इन महत्वपूर्ण योगदानों को नकार दिया। सामाजिक ग़ैर–बराबरी के ख़िलाफ़ बुनियादी गरिमा स्थापित करने के लिए लड़ी गई लड़ाइयाँ, जो आम तौर पर भुला दी जाती हैं, लोकतंत्र के उतने ही बड़े सृजक हैं जितने कि वे लेखक जिन्होंने अपनी आकांक्षाओं को लिखित रूप में दर्ज किया और जिनके संरक्षित लेख हम आज भी पढ़ते हैं।

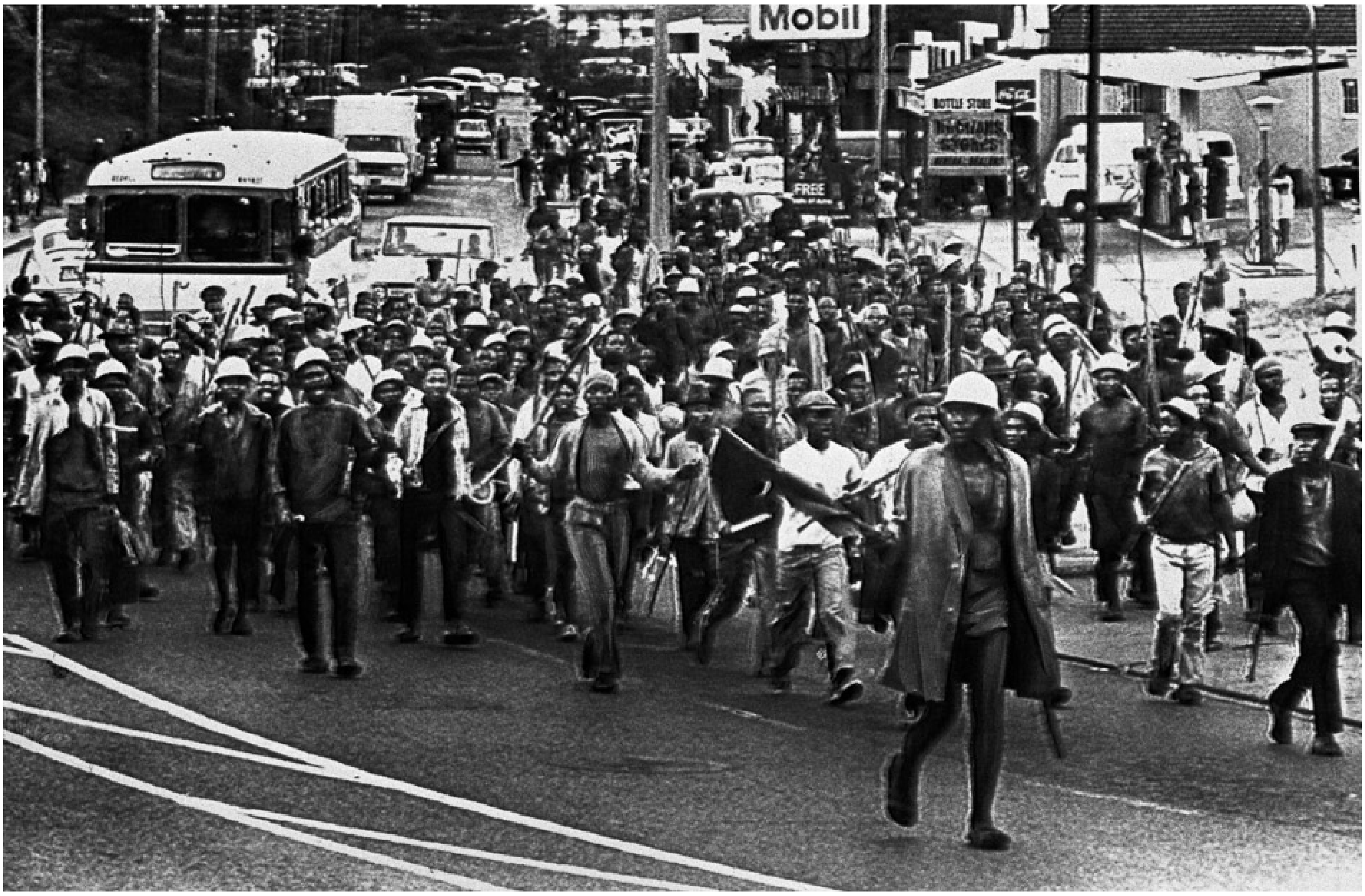

कोरोनेशन ईंट भट्टा मज़दूर डरबन में नॉर्थ कोस्ट रोड पर प्रदर्शन कर रहे हैं; लाल झंडा लहराते हुए एक मज़दूर उनका नेतृत्व कर रहा है।
क्रेडिट: डेविड हेमसन संग्रह, केप टाउन पुस्तकालय विश्वविद्यालय.

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान, कम्युनिस्ट विरोधी कुलीन वर्गों और उनके पश्चिमी सहयोगियों द्वारा तीसरी दुनिया में स्थापित किए गए तानाशाही शासनों के ख़िलाफ़ कई संघर्ष उठ खड़े हुए। ये शासन ब्राज़ील, फ़िलीपींस और तुर्की जैसे देशों में तख़्तापलट के द्वारा स्थापित किए गए थे और दक्षिण अफ़्रीका में इन्हें क़ानूनी भेद–भाव बनाए रखने की ताक़त मिली। जो बड़े विरोध प्रदर्शन इन संघर्षों के केंद्रबिंदु बने, उनके पीछे कई तरह की राजनीतिक ताक़तें काम कर रही थीं। उनमें से एक ताक़त थी ट्रेड यूनियन – इतिहास का वह पक्ष जिसे अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है। तुर्की में बढ़ता ट्रेड यूनियन आंदोलन, वास्तव में, 1971 और 1980 के सैन्य तख़्तापलट का बड़ा कारण बना। दोनों सैन्य सरकारों ने यूनियनों और हड़तालों पर प्रतिबंध लगा दिया, क्योंकि मज़दूर वर्ग के संघर्ष से सत्ता पर उनकी पकड़ कमज़ोर हो रही थे। इस बात का अंदाज़ा कन्फ़ेडरेशन ऑफ़ प्रोग्रेसिव ट्रेड यूनियंस (DISK) से जुड़ी यूनियनों के आहवान पर अनातोलिया की हड़तालों से लगाया जा सकता है, जिनमें 1,00,000 श्रमिकों की दो दिवसीय हड़ताल भी शामिल है। फ़रवरी 1967 में स्थापित संघ, उससे पहले मौजूद संघ (तुर्की) की तुलना में अधिक परिवर्तनवादी था। तुर्क इस पूँजी का सहयोगी बन गया था। वाशिंगटन की हरी झंडी देखकर सेनाएँ न केवल संप्रभुता का प्रयोग और अपने लोगों की गरिमा में सुधार लाने का प्रयास कर रही समाजवादी सरकारों (जैसे कि 1961 में कांगो में, 1964 में ब्राज़ील, 1965 में इंडोनेशिया, 1966 में घाना और 1973 में चिली) के तख़्तापलट के लिए बल्कि हड़तालों और श्रमिकों के विरोध–प्रदर्शनों को कुचलने के लिए भी बैरकों से बाहर निकलीं।

एक बार सत्ता में आने के बाद, ख़ाकी वर्दी और बेहतरीन रेशमी सूट बूट वाले इन मनहूस शासनों ने नवउदारवाद से प्रेरित कटौती की नीतियाँ लागू कीं और मज़दूरों–किसानों के सभी आंदोलनों का दमन शुरू किया। लेकिन वे मानवीय भावना को नहीं तोड़ सके। अधिकांश दुनिया में (जैसे ब्राज़ील, फ़िलीपींस और दक्षिण अफ़्रीका में) ट्रेड यूनियनों ने ही बर्बरता के ख़िलाफ़ कार्रवाइयाँ शुरू की थीं। फ़िलीपींस में 1975 में ला टोंडेना डिस्टिलरी के श्रमिकों द्वारा बुलंद किया गया नारा 'तमा ना! सोबरा ना! वेल्गा ना!' ('बहुत हो चुका! अब बात बहुत दूर चली गई है! अब हड़ताल का समय है!') फ़र्डिनेंड मार्कोस की तानाशाही के ख़िलाफ़ सड़कों पर हुए विरोध प्रदर्शनों में भी गूँजा। इन विरोध प्रदर्शनों ने अंततः 1986 के पीपल पावर रेवोल्यूशन की शक्ल ली। ब्राज़ील में, औद्योगिक मज़दूरों ने 1978 से 1981 के दौरान लुइज़ इनासियो लूला डा सिल्वा (जो अब ब्राज़ील के राष्ट्रपति हैं) के नेतृत्व में कई प्रदर्शन किए। उनकी गतिविधियों से साउ पौलो के औद्योगिक शहर, जैसे सैंटो आँड्रे, साउ बर्नार्डो दो कैंपो, और साउ कैतनो दो सुल, ठप पड़े थे। इन प्रदर्शनों ने देश के मज़दूरों और किसानों को हिम्मत दी, जिससे सेना का विरोध करने का उनका आत्मविश्वास बढ़ा, और 1985 में सैन्य शासन की समाप्ति हुई।

कॉन्सोलिडेटेड टेक्सटाइल मिल के मज़दूर अपनी दिहाड़ी में 5 रैंड बढ़ाने के लिए हड़ताल कर रहे हैं, फ़रवरी, 1973।
क्रेडिट: डेविड हेमसन संग्रह, केप टाउन पुस्तकालय विश्वविद्यालय.

पचास साल पहले, जनवरी 1973 में, डरबन, दक्षिण अफ़्रीका के मज़दूरों ने वेतन वृद्धि के लिए हड़ताल की थी। लेकिन उनकी हड़ताल गरिमापूर्ण जीवन के लिए भी थी। वे 9 जनवरी को सुबह 3 बजे उठे और पैदल चलकर एक फ़ुटबॉल स्टेडियम तक गए, जहाँ उन्होंने 'उफ़िल' उमुन्तु, उफ़िले उसादिकीज़ा, वामथिंट 'एस्वेनी, एस्वेनी उसादिकीज़ा' ('व्यक्ति मरता है, लेकिन उनकी आत्मा जीवित रहती है; उनकी आँखों की पुतलियाँ ज़रा हिलाओ, वो फिर जीवित हो जाएँगे') के नारे लगाए। इन श्रमिकों ने वर्चस्व के उन जड़ रूपों के ख़िलाफ़ रास्ता खोला, जो न केवल उनका शोषण करते थे, बल्कि समाज के सभी लोगों का दमन करते थे। वे कठोर श्रम परिस्थितियों के ख़िलाफ़ खड़े हुए और दक्षिण अफ़्रीका की रंगभेद सरकार को याद दिलाया कि वे तब तक नहीं बैठेंगे जब तक कि वर्ग और रंग के आधार पर बाँटने वाली रेखाएँ टूट नहीं जातीं। इन हड़तालों ने शहर में क्रांति का एक नया समय शुरू किया। ये हड़तालें जल्द ही कारख़ाने से बाहर निकलकर व्यापक समाज का हिस्सा बन गईं। एक साल बाद, एक मेडिकल डॉक्टर सैम म्हालोंगो, जिन्हें उनकी किशोरावस्था में रॉबेन द्वीप पर क़ैद किया गया था, ने कहा कि 'यह हड़ताल, हालाँकि अब बंद हो गई है, पर इसने एक विस्फोटक की तरह असर डाला था" वह मशाल 1976 में सोवेतो के बच्चों के हाथ में गई।

ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान और क्रिस हानी इंस्टीटयूट ने मिलकर एक यादगार लेख तैयार किया है। यह लेख '**द 1973 डरबन स्ट्राइक्स: बिल्डिंग पॉप्युलर डेमक्रैटिक पावर इन साउथ अफ़्रीका**' के नाम से हमारे डोज़ियर संख्या 60, जनवरी 2023 के रूप में उपलब्ध है। यह लेख दो अर्थों में यादगार है: यह रंगभेद के ख़िलाफ़ चले संघर्ष में श्रमिक वर्ग की भूमिका के लगभग भुला दिए गए इतिहास को पुन: स्थापित करता है और विशेष रूप से अश्वेत श्रमिक वर्ग की भूमिका पर प्रकाश डालता है जिनके संघर्षों का समाज पर 'विस्फोटक' असर पड़ा था। इस डोज़ियर को जोहानेसबर्ग में

हमारे सहयोगियों ने बड़ी ख़ूबसूरती से लिखा है। इस डोज़ियर को पढ़ते हुए उन श्रमिकों को भूलना कठिन हो जाता है और उससे भी ज़्यादा कठिन हो जाता है उस श्रमिक वर्ग को भूलना जो आज भी दक्षिण अफ़्रीका में हाशिए पर है, जबकि देश की सामाजिक संपत्ति का बड़ा हिस्सा उसे मिलना चाहिए। उन्होंने रंगभेद की कमर तोड़ी लेकिन अपने बलिदानों के बाद भी उन्हें ख़ुद कोई फ़ायदा नहीं हुआ है।

क्रिस हानी संस्थान की स्थापना 2003 में दक्षिण अफ़्रीका की कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस ऑफ़ साउथ अफ़्रीकन ट्रेड यूनियनों ने की थी। क्रिस हानी (1942-1993) दक्षिण अफ़्रीका के महान स्वतंत्रता सेनानियों में से एक थे; वे एक साम्यवादी थे, यदि रंगभेद के अंत में उनकी हत्या नहीं कर दी जाती तो समाज पर उनका और अधिक प्रभाव पड़ा होता। हम इस सहयोग के लिए क्रिस हानी इंस्टीटच्यूट के निदेशक डॉ सिथेम्बिसो भेंगू के आभारी हैं और हमारे सामने करने के लिए जो काम है उनके लिए फिर से उनके सहयोग की उम्मीद करते हैं।

जब यह डोजियर छप रहा था, हमें समाचार मिला कि हमारे दोस्त थुलानी मसेको (1970-2023), स्वाजीलैंड में मल्टी–स्टेकहोल्डर्स फ़ोरम के अध्यक्ष, की 21 जनवरी को उनके परिवार वालों के सामने गोली मारकर हत्या कर दी गई। मसेको अपने देश में लोकतंत्र लाने की लड़ाई का नेतृत्व कर रहे नेताओं में से एक थे; उनके देश में श्रमिक वर्ग राजशाही को ख़त्म करने की लड़ाई में अग्रणी भूमिका निभा रहा है।

मैं इस न्यूज़लेटर को लिखने के लिए हमारा नया डोज़ियर, द 1973 डरबन स्ट्राइक्स, फिर से पढ़ रहा था, और ह्यूग मसेकेला का गीत 'स्टिमेला' ('कोल ट्रेन') सुन रहा था। यह गीत 1974 में कोल ट्रेन पर सवारी करने वाले प्रवासी मज़दूरों का गीत है जो 'पृथ्वी के गर्भ में गहरे, गहरे, गहरे नीचे उतरकर रंगभेदी पूँजी के लिए धन जुटाने' का काम करते हैं। मेरे कान में मसेकेला की ट्रेन की सीटी सुनाई दे रही थी और मैं डरबन के औद्योगिक श्रमिकों के बारे में सोचने लगा। मुझे मोंगने वैली सेरोटे की लंबी कविता, थर्ड वर्ल्ड एक्सप्रेस, याद आ गई। यह कविता दक्षिणी अफ़्रीका के श्रमिकों और एक मानवीय समाज की स्थापना के लिए उनके संघर्ष को श्रद्धांजलि है।

– ये वो हवा है

ये वो गूँजती आवाज़ है

यह तारों में सुन रही फुसफुसाहट और सीटी है

जो मीलों तक

हवा में टंगी तारों पर

सबवे ट्रैक में

रोलिंग रोड में

ख़ामोश न रहने वाली झाड़ी में

यह शोर की आवाज़ है

देखो आ रही है

थर्ड वर्ल्ड एक्सप्रेस

उन्हें कहना चाहिए, कि हम आ रहे हैं फिर से।

सेरोटे ने लिखा था, 'हम आ रहे हैं फिर से', मानो कह रहे हों कि नये विरोधाभास संघर्ष के लिए नये क्षण पैदा करेंगे। एक दमनकारी व्यवस्था – रंगभेद – के अंत से वर्ग संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। बल्कि यह संघर्ष गहरा हुआ है, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका एक के बाद एक संकट में घिरा पड़ा है। वे मज़दूर ही थे जो लोकतंत्र लेकर आए थे, और मज़दूर ही आज से भी गहरा लोकतंत्र स्थापित करने का संघर्ष करेंगे। हम आ रहे हैं फिर से।

स्नेह–सहित,

विजय।